Original Article
ISSN(Online): 3139-4434
https://ijeagr.com/

International Journal of Educational Analysis and Global Research
International Open Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal
Volume 01, Issue 02, May 2026

सिनेमा और दृश्य माध्यमों में स्मृति का आख्यान

अलक्षेन्द्र प्रभाकर
सीनियर रिसर्च फेलो, थिएटर आर्ट्स विभाग, मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई
Email: prabhakaralakshendra@gmail.com

सारांश:

स्मृति का आख्यान मात्र बीती हुई घटनाओं को स्मरण करने का साधन नहीं है अपितु यह हमारे अस्तित्व, पहचान और मानवीय सम्वेदनाओं का जीवंत दस्तावेज है। यह बीते हुए कल का एक ऐसा रंगमंच है जिसके माध्यम से हम आज को समझते हैं और कल की तैयारी करते हैं। जब कोई व्यक्ति या लेखक अपनी पुरानी यादों को एक सुनियोजित कहानी का रूप देता है तो उसे स्मृति का आख्यान कहा जाता है। सिनेमा, दृश्य कलाओं के विभिन्न रूप एवं साहित्य की अनेक विधाएँ स्मृति के आख्यान पर टिकी हैं। स्मृति के आख्यान में सिनेमा और थिएटर सबसे सक्षम और समय को रोकने तथा उसे वर्तमान में लाने के सशक्त माध्यम हैं। फ्लैशबैक में जब कोई किरदार अतीत में जाता है तो दर्शक भी उसके साथ बीती हुई याद का हिस्सा बन जाते हैं। दृश्य माध्यम के जितने भी प्रकार हैं, वे सब कला के व्यापक क्षेत्र हैं। हस्तकला, चित्रकला, मूर्तिकला, डिजिटल माध्यम, सोशल मीडिया मंच, ग्राफिक डिजाइन, डिजिटल आर्ट, फोटोग्राफी आदि मनुष्य के अतीत की भावनाओं, अनुभवों को दर्शाने वाले दृश्य माध्यम हैं। इन सब में सिनेमा और थिएटर इतिहास की आख्या करने वाले दो मजबूत मंच हैं। कला के सभी दृश्य माध्यमों अथवा कलात्मक गतिविधियों में हमारी सक्रिय भागीदारी और दिलचस्पी हमारे जीवन को अधिक स्वस्थ, समृद्ध, खुशहाल और ऊर्जावान बनाकर उसे सामाजिक नवनिर्माण की ओर प्रेरित करती है। इतना ही नहीं, जो लोग नियमित रूप से थिएटर जाते हैं या संगीत, पेंटिंग सीखते हैं उनकी एपिजेनेटिक आयु उन लोगों की तुलना में काफी कम होती है जो कला से दूर रहते हैं। निश्चित ही यह चौंकाने वाला तथ्य है।

महत्वपूर्ण शब्द : सिनेमा, स्मृति, दृश्य माध्यम, आख्यान, थिएटर, डिजिटल मीडिया, एपिजेनेटिक, संस्कृति, लोकतंत्रीकरण, नास्टेल्जिया।

Received 05 May 2026
Accepted 15 May 2026
Published 20 May 2026

Corresponding Author:
अलक्षेन्द्र प्रभाकर
Email: prabhakaralakshendra@gmail.com

Doi: https://doi.org/10.64880/ijeagr.v1i2.04
Funding: This research received no specifics grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s). This is an open access article under the Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License.

OPEN ACCESS

कला का महत्व :

कला हमारे अस्तित्व, संस्कृति और मानसिक चेतना का एक अनिवार्य हिस्सा है। यही वह माध्यम है जो मनुष्य को अन्य जीवों से अलग और अधिक संवेदनशील बनाता है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने माना है कि "ईश्वर की कल्याणी सृष्टि के रचनात्मक रूप का अनुकरण ही कला है। कला का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य के माध्यम से सत्य को पाना है।"1

कला के महत्व और प्रभाव के बारे में हाल ही में यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन द्वारा 'इनोवेशन इन एजिंग' पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन यह बताता है कि कलात्मक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी हमारी जैविक उम्र को धीमा करने में मददगार है। ऐसे अनुभव मानसिक शांति, सामाजिक जुड़ाव, और दिमागी सक्रियता को बढ़ाकर जीवन को अधिक स्वस्थ, खुशहाल और ऊर्जावान बनाते हैं।

अध्ययन के हैरान करने वाले निष्कर्षों में से एक यह था कि जो लोग नियमित रूप से थिएटर जाते हैं, पेंटिंग करते हैं, संगीत सीखते हैं या संग्रहालय का दौरा करते हैं उनकी एपिजेनेटिक उम्र उन लोगों की तुलना में काफी कम होती है जो कला से दूर रहते हैं। साथ ही, हम जब किसी कलाकृति को देखते हैं या खुद रचनात्मक करते हैं तो मस्तिष्क में डोपामाइन और एंडोफिन जैसे 'फील गुड' हार्मोन का स्राव होता है। यह प्रक्रिया कॉर्टिसोल (तनाव हार्मोन) के स्तर को काफी नीचे ले जाती है। डेटा से पता चला कि कला के करीब रहने वाले लोगों में संज्ञानात्मक गिरावट की गति बेहद धीमी थी। 2

कला के दृश्य माध्यम :

कला के दृश्य माध्यम (Visual Mediums) उन्हें कहा जाता है जिन्हें हम मुख्यतः अपनी आंखों से देखकर अनुभव करते हैं। इन माध्यमों को दृश्य कला (Visual Arts) कहा जाता है। यह कला का व्यापक क्षेत्र है।

दृश्य माध्यमों को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है :--

1. पारंपरिक दृश्य माध्यम (Traditional Mediums) : ये कला के वे रूप हैं जो सदियों से चले आ रहे हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, हस्तशिल्प, रेखाचित्र, छायाचित्र आदि इन माध्यमों के प्रमुख रूप हैं।

2. आधुनिक और डिजिटल माध्यम (Modern and Digital Mediums) : इसके अंतर्गत फोटोग्राफी, डिजिटल आर्ट, ग्राफिक डिजाइन आते हैं।

3. समय और स्थान आधारित माध्यम (Time and Space Based Mediums) : इन माध्यमों के अंतर्गत दृश्य कला के साथ-साथ समय, स्थान और गति (Motion) का भी महत्व होता है। सिनेमा, वीडियो आर्ट, इंस्टॉलेशन आर्ट, गैलरी आर्ट आदि इसके प्रमुख प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त रंगमंच (थिएटर) ऐसा माध्यम है जो दृश्य और प्रदर्शन कला दोनों का हिस्सा है। इसमें पात्रों का अभिनय, मंच की साज - सज्जा, पात्रों की वेशभूषा और लाइटिंग व्यवस्था पूरी तरह दृश्य कला के ही अंग हैं।

स्मृति का आख्यान (Narrative of Memory) :

मनुष्य के अतीत के अनुभवों, भावनाओं, घटनाओं और समय के साथ-साथ संचित किए गए क्षणों को स्मृति कहा जाता है। रॉबर्ट एस. वुडवर्थ के अनुसार, "पहले सीखे जा चुके कार्य को (वर्तमान में) दोहराना ही स्मृति है।" 3 भारतीय मनोवैज्ञानिक डॉ. एसपी चौबे ने लिखा है कि "स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति पूर्व समय में सीखे गए ज्ञान अथवा अनुभवों को अपनी चेतना में वापस लाने का प्रयास करता है।"4

आख्यान का आशय किसी बात को कथा, कहानी या वृतांत के रूप में कहने या लिखने से है। जब कोई व्यक्ति या लेखक अपनी पुरानी यादों को एक सुनियोजित कहानी (Narrative) का रूप देता है तो उसे स्मृति का आख्यान कहा जाता है। इस तरह स्मृति का आख्यान वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अतीत के बिखरे हुए अनुभवों, संस्मरणों और घटनाओं को कल्पना, भाषा और चेतना के माध्यम से व्यवस्थित कथासूत्र में पिरोता है। सिनेमा, दृश्य कलाओं के विभिन्न रूप, साहित्य की अनेक विधाएँ स्मृति के आख्यान पर टिकी हैं।

सिनेमा में स्मृति का आख्यान :

सृजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों में सिनेमा सभी कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। सिनेमा की विभिन्न विद्वानों ने जो परिभाषाएं दी हैं उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि और समष्टि के संबंधों का विशिष्ट विज्ञान है। यह मनोरंजन के साथ-साथ सांस्कृतिक विकास और नए युग का प्रवर्तन करता है। सिनेमा मानवीय आवेगों और भावनाओं को उनकी संपूर्णता में चित्रित करने का सर्वोत्तम माध्यम है। सन् 1917 में रूसी क्रांति के

बाद ब्लादीमिर इल्यीच लेनिन ने सिनेमा को सभी कलाओं में श्रेष्ठ बताते हुए इसे विशाल जनसंख्या को एकसूत्र में बांध लेने का सशक्त माध्यम माना है। उनके अनुसार, "हमारे लिए सिनेमा सभी कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण है। सिनेमा न केवल लोगों के मन-बहलाव का बल्कि सामाजिक शिक्षा, संवाद स्थापित करने का तथा हमारी विशाल जनसंख्या को एक सूत्र में बांध लेने का सशक्त माध्यम है।" 5 लेनिन के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि वह सिनेमा को केवल मनोरंजन का साधन नहीं मानते थे। उनके लिए सिनेमा अशिक्षित जनता को शिक्षित करने, प्रचार करने और क्रांति के विचारों को फैलाने का सबसे शक्तिशाली माध्यम था। उनका एक प्रसिद्ध कथन है :

"Of all the arts, for us, the cinema is the most important."6

यह कथन उस समय आया जब सोवियत संघ की अधिकांश आबादी अशिक्षित थी। लेनिन का मानना था कि अनपढ़ जनता में सिनेमा के जरिए समाजवाद और शिक्षा का संदेश सबसे तेजी से पहुंचाया जा सकता है।

किनेटोस्कोप (Kinetoscope) को आधुनिक सिनेमा प्रोजेक्टर का पूर्वज माना जाता है जिसका आविष्कार थॉमस अल्वा एडिसन और उसके सहायक विलियम डिक्सन ने मिलकर सन् 1891 के आसपास किया था। यह आजकल के बड़े थियेटर स्क्रीन जैसा प्रोजेक्टर न होकर एक पीपहोल (Peep hole) अर्थात् झांकने वाला छेद वाला डिवाइस था। लोग इसमें सिक्का डालकर कुछ सेकंड की छोटी-छोटी क्लिप देखा करते थे। क्योंकि किनेटोस्कोप को एक बार में केवल एक ही व्यक्ति देख सकता था, इसलिए यह व्यवसाय का मजबूत साधन न बन सका; फिर भी हम एडिसन को सिनेमा का जनक मान सकते हैं किंतु सिनेमा के इतिहास में ल्यूमियर बंधुओं का नाम आधुनिक सिनेमा के पिता के रूप में माना जाता है जिन्होंने सिनेमैटोग्राफ का आविष्कार कर सिनेमा-जगत् में तहलका मचा दिया था।

ऑगस्ट मारिए लुइस निकोलस ल्यूमियर (Auguste Marie Luis Nicholas Lumiere) और लुईस ज्याँ ल्यूमियर (Luis Jean Lumiere) फ्रांस के निवासी दो सगे भाई थे। ऑगस्ट का जन्म सन् 1862 में और लुईस का जन्म सन् 1864 में हुआ था। अपने सरनेम ल्यूमियर के कारण यह ल्यूमियर बंधुओं के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके पिता क्लाउड एंटोनी ल्यूमियर की एक फोटोग्राफिक फर्म थी। इस फर्म ने दोनों भाइयों को फोटोग्राफी और रसायनों के साथ प्रयोग करने का अनुकूल वातावरण दिया। ल्यूमियर बंधुओं ने सिनेमैटोग्राफ को सन् 1895 में पेटेंट कराया। यह तकनीक एक साथ कैमरा, फिल्म प्रिंटर और प्रोजेक्टर तीनों का काम करती थी। इसे कहीं भी ले जाना आसान था जिसके कारण दुनिया की बाहरी चीजों को रिकॉर्ड करना संभव हुआ। एडिसन के किनेटोस्कोप में एक समय में केवल एक ही व्यक्ति छेद में झाँक कर फिल्म देख सकता था लेकिन ल्यूमियर बंधुओं की सिनेमैटोग्राफ तकनीक के द्वारा एक समय में सैकड़ों लोग एक साथ फिल्म देख सकते थे। ल्यूमियर बंधुओं ने सन् 1895 में 28 दिसंबर को पेरिस के ग्रैंड कैफे के बेसमेंट में विश्व का पहला व्यावसायिक सार्वजनिक फिल्म प्रदर्शन (Commercial Public Screening) किया जिसमें लगभग दस लघु फिल्में दिखाई गईं जिनमें से प्रत्येक की अवधि 50 सेकंड थी। वास्तव में, यहीं से थिएटर की संस्कृति प्रारंभ हुई।

ल्यूमियर बंधुओं ने सिनेमा को केवल फ्रांस तक सीमित नहीं रखा, उन्होंने अपने प्रतिनिधियों के सहयोग से भारत, अमेरिका, रूस, चीन आदि देशों में सिनेमा का प्रचार - प्रसार किया। उन्होंने जुलाई सन् 1896 में बम्बई (अब मुम्बई) के वाटसन होटल में भारत का पहला फिल्म शो आयोजित किया। इस आयोजन के द्वारा नासिक जिले के त्रयंबकेश्वर में जन्में धुंडीराम गोविंद फाल्के को भारत में सिनेमा के संस्थापक के रूप में विश्व में पहचान मिली। धुंडीराम गोविंद फाल्के बाद में दादा साहब फाल्के के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्हें भारत में सिनेमा का जनक ही नहीं, सिनेमा का पितामह माना जाता है। फाल्के जी से पहले भारत में केवल विदेशी फिल्में अथवा विदेशी तकनीक से बनी लघु फिल्में ही दिखाई जाती थीं। फाल्केजी का विचार था कि जैसे पर्दे पर हम विदेशी चेहरे देखते हैं वैसे ही हमें अपने देवी-देवताओं और लोगों को देखना चाहिए। उन्होंने स्वदेशी संसाधनों का उपयोग करके सन् 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' (मूक) फिल्म बनाकर भारत में फिल्म उद्योग की नींव रखी।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक जाइल्स डेल्यूज ने सिनेमा को किसी भाषा के रूप में देखने के बजाय इसे छवियों और संकेतों का एक अनूठा संयोजन माना है।7 उन्होंने इसे समय -छवि कहा है जहां समय और स्मृति परस्पर गुंथ जाते हैं।

सिनेमा की शुरुआत से ही विभिन्न तकनीकों के सहारे उसमें स्मृतियों का आख्यान प्रस्तुत किया गया है। पहली टॉकी (Talkie) फिल्म 'आलम आरा' का निर्माण भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना है। सन् 1931 में अर्देशिर ईरानी के निर्देशन में बनी इस फिल्म का पहला प्रदर्शन बॉम्बे (अब मुम्बई) के मैजिस्टिक सिनेमा में 14 मार्च 1931 को हुआ। यह फिल्म इतनी लोकप्रिय हुई कि सिनेमा हॉल के बाहर भारी भीड़ को नियंत्रित करने के लिए पुलिस की सहायता लेनी पड़ी थी।

फिल्म की कहानी एक काल्पनिक राज्य कुमिरपुर के राजा की दो रानियों दिलबहार और नवबहार की परस्पर ईर्ष्या से आरंभ होती है। दिलबहार नि:संतान है जबकि नवबहार गर्भवती हो जाती है। दिलबहार उससे ईर्ष्या करने लगती है। इसी बीच दिलबहार सेनापति आदिल की ओर आकर्षित हो जाती है किंतु आदिल उसके प्रेम प्रस्ताव को ठुकरा देता है। दिलबहार क्रोधवश आदिल पर आरोप लगाकर उसे जेल में डलवा देती है और उसके परिवार को निकलवा देती है। उस समय सेनापति आदिल की पत्नी गर्भवती थी। वह जंगल में बंजारों की शरण में जाती है जहां उसके गर्भ से एक खूबसूरत लड़की का जन्म होता है। उसका नाम आलम आरा रखा जाता है। इधर, राजा की छोटी रानी नवबहार को भी एक पुत्र की प्राप्ति होती है जिसका नाम जहाँगीर रखा जाता है। समय के साथ-साथ आलम आरा और जहांगीर बड़े होते हैं। उनकी मुलाकात होती है और दोनों एक दूसरे से प्यार करने लगते हैं। आलम आरा को अपने पिता आदिल के साथ हुए अन्याय का पता चलता है। वह दिलबहार के प्रति विद्रोह कर देती है। राजा को सारी स्थिति का पता चलता है। वह दिलबहार को सजा सुनाते हैं। सेनापति को रिहा कर राजकुमार जहांगीर और आलम आरा का विवाह करा देते हैं।

'आलम आरा' से पहले भारत में केवल मूक फिल्में बनती थीं। इस फिल्म ने पहली बार सिनेमाई परदे पर अपनी भाषा, संवाद और गानों को सुनते हुए अनुभव करने का अवसर दिया। इसने भारतीय सिनेमा में संगीत की जो नींव रखी वह आज भी हमारी फिल्मों की मुख्य पहचान है। वजीर मोहम्मद खान के द्वारा गाया गया गीत 'दे दे खुदा के नाम पर प्यारे' सिनेमा के इतिहास में पहला गीत बना। यह गीत भारतीय समाज में प्रचलित फकीरी परंपरा, दान और लोक -संस्कृति की स्मृति को पर्दे पर जीवंत करता है। फिल्म की भाषा हिंदी या उर्दू न होकर हिंदुस्तानी थी जो उस दौर की आम बोलचाल की भाषा थी। यह उस समय की याद दिलाती है जब कला के माध्यम से समाज को जोड़ने का प्रयास किया जाता था। इसकी पटकथा ने पारसी थिएटर के उस दौर को सिनेमाई स्मृति में बदल दिया जहां हिंदू- मुस्लिम संस्कृतियों का एक खूबसूरत मेल देखने को मिलता था।

हिंदी की ऐतिहासिक और पौराणिक फिल्में मुख्यतः स्मृति का आख्यान ही हैं किंतु यह स्मृति कोई स्थिर या मात्र इतिहास की पुस्तकों से ली गई वस्तु नहीं है। यह सांस्कृतिक, सामूहिक और कई बार राजनीतिक रूप से निर्मित की गई स्मृति होती है। इतिहास एक प्रकार से तथ्यों, तारीखों और दस्तावेजों पर आधारित होता है जबकि स्मृति इस तथ्य पर निर्भर करती है कि अतीत को हम किस तरह याद रखना चाहते हैं। अनारकली (1953), मदर इंडिया (1957), मुग़ल-ए-आजम (1960), सिकंदर-ए-आजम (1965), लगान (2001), द लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह (2002), मंगल पांडे द राइजिंग (2005), नेताजी सुभाष चंद्र बोस : द फॉरगॉटेन हीरो (2005), जोधा अकबर (2008), बाजीराव मस्तानी (2015), पद्मावत (2018) आदि ऐतिहासिक फिल्में और राजा हरिश्चंद्र (1913), संपूर्ण रामायण (1961), कर्ण (1964), जय संतोषी मां (1975), बजरंगबली (1976), भक्त प्रहलाद (1967), कलयुग (1981) आदि पौराणिक फिल्में मात्र इतिहास या पुराणों की पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं अपितु ये ऐतिहासिक, पौराणिक स्मृतियों का एक भव्य आख्यान हैं। ये फिल्में दर्शकों में एक खास तरह का नास्टेल्जिया (अतीत के प्रति मोह या आकर्षण) पैदा करती हैं। भव्य महल , युद्ध, पारंपरिक पोशाकें और संवादों की उर्दू या शुद्ध हिंदी शब्दावली दर्शकों को एक ऐसे अतीत की याद दिलाती है जिसे उन्होंने खुद कभी नहीं जिया किंतु वे उसे अपनी सांस्कृतिक विरासत मानकर जुड़ा महसूस करते हैं।

'अनारकली' फिल्म पाकिस्तान के प्रसिद्ध उर्दू नाटककार इम्तियाज अली ताज के सन् 1922 में लिखे गए नाटक 'अनारकली' का अनुकरण है। यह नाटक पहली बार सन् 1932 में प्रकाशित हुआ। यह नाटक इतना प्रसिद्ध हुआ कि इसे उर्दू नाटक जगत् का 'ताजमहल' कहा जाने लगा। इसी नाटक पर आधारित सन् 1953 में नंदलाल जसवंत लाल के निर्देशन में फिल्म 'अनारकली' और सन् 1960 में के० आसिफ के निर्देशन में फिल्म मुग़ल-ए-आज़म का निर्माण हुआ।

मुगल इतिहास में अनारकली का कोई ठोस प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता किंतु लोक -स्मृति ने उसे कभी मरने नहीं दिया। अनारकली भारतीय सिनेमा में लोक - चेतना और साहित्य का एक ऐसा अमर चरित्र है जो इतिहास और मिथक के धुंधलके में सांस लेता है। जब हम इस फिल्म के स्मृति-आख्यान पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि यह केवल एक प्रेम-कथा की स्मृति नहीं है अपितु पद, सत्ता, दमन प्रतिरोध और इतिहास के पुनर्लेखन की एक गहरी मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है। महबूब खान द्वारा निर्देशित फिल्म 'मदर इंडिया' भारतीय सिनेमा की एक युगांतरकारी कृति है जिसकी कहानी अतीत की यादों (Flash back) के सहारे बुनी गई है। यह फिल्म आजादी के ठीक एक दशक बाद आई थी जिसमें नए भारत के जन्म की कहानी है। नायिका राधा (नरगिस) का अतीत उस दबी-कुचली व्यवस्था का प्रतीक है जिससे भारत आजाद हुआ था। राधा की स्मृति में उसका संघर्ष एक व्यक्तिगत पीड़ा न होकर एक मां के अदम्य साहस का आख्यान है। वह अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करने के निमित्त सुक्खी लाला के आगे झुकने से मना कर देती है और अपने बच्चों को अकेले पालती है। यह स्मृति भारतीय नारी के त्याग और शक्ति के रूप में स्थापित करती है। 8

' मुग़ल-ए- आज़म' भारतीय सिनेमा की कालजयी फिल्म है। फिल्म में अकबर (पृथ्वीराज कपूर) को याद है कि सलीम (दिलीप कुमार) उसे दुआओं के बाद पैदा हुआ था। इन स्मृतियों को शुरुआती दृश्यों में दिखाया गया है जहां वह नंगे पैर मन्नत मांगने जाता है किंतु जब सलीम बगावत करता है तो अकबर को अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों (पिता के प्रेम) को दबाकर हिंदुस्तान के शहंशाह के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका को चुनना पड़ता है।

पृथ्वीराज कपूर और दारा सिंह अभिनीत ऐतिहासिक फिल्म 'सिकंदर-ए-आज़म' में यूनान के राजा सिकंदर और झेलम के राजा पोरस के मध्य वैचारिक स्मृतियों की लड़ाई है। सिकंदर के लिए स्मृति का मतलब एक ऐसे विजेता के रूप में याद किया जाना है जिसने पूरे विश्व को जीत लिया है। उसकी महत्वाकांक्षा और राष्ट्रवाद इतिहास के पृष्ठों में अमर होने के प्रबल इच्छा से प्रेरित है जबकि पोरस अपनी भारतीय संस्कृति, स्वाभिमान और वफादारी से सिकंदर को यह स्मृत कराता है कि इतिहास केवल विजेताओं के नाम याद नहीं रखता बल्कि उनके नाम भी याद रखता है जिन्होंने सम्मान के लिए युद्ध लड़ा। फिल्म का प्रसिद्ध गीत 'जहां डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती हैं बसेरा' अप्रत्यक्ष रूप से भारत की उस गौरवशाली समृद्ध स्मृति और पहचान को रेखांकित करता है जिसे नष्ट करना किसी विदेशी आक्रमणकारी के लिए असंभव था।

'लगान' फिल्म में आधिकारिक तौर पर चंपानेर का मैच कभी रिकॉर्ड नहीं हुआ किंतु स्मृति के आख्यान ने उसे अमर बना दिया। राजकुमार संतोषी द्वारा निर्देशित 'द लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह' फिल्म में स्मृति को एक शक्तिशाली सिनेमाई उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जलियांवाला बाग नरसंहार के रक्त से रंजित मिट्टी को बालक भगत सिंह के द्वारा एक बोतल में भरा जाना और उसे अपने पास रखना इस स्मृति के एक ऐसे आख्यान को दिखाता है जो व्यक्तिगत दर्द को राष्ट्रीय क्रांति में बदल देता है। फिल्म के 'मेरा रंग दे बसंती चोला' या 'सरफरोशी की तमन्ना' जैसे गीत केवल पृष्ठभूमि संगीत नहीं हैं बल्कि वे उस दौर की सामूहिक स्मृति को पुनर्जीवित करते हैं। ये गीत दर्शकों के भीतर एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक स्मृति को सक्रिय करते हैं जिससे दर्शक स्वयं को उस कालखंड से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं।

'मंगल पांडे : द राइजिंग', 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस : द फॉरगॉटेन हीरो' नामक फिल्में इतिहास की धुंध से एक नायक को निकाल कर उसे लोक - स्मृति और राष्ट्रवाद के उत्सव में बदल देती हैं। दोनों ही फिल्में यह प्रमाणित करती हैं कि स्मृति एक जीवित विमर्श है जिसे सिनेमा के जरिए बार-बार पुनर्जीवित किया जा सकता है। 'जोधा अकबर', 'बाजीराव मस्तानी', " फिल्में भारतीय इतिहास, उसकी पहचान और सांस्कृतिक मेलजोल को दर्शाने का

बहुत ही सुंदर साधन हैं। ये केवल ऐतिहासिक घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं हैं अपितु स्मृतियों, परंपराओं और व्यक्तिगत पहचान को संजोने और उसे एक नए साम्राज्य के निर्माण में इस्तेमाल करने की कथाएं हैं।

पौराणिक फिल्मों के इतिहास में दादा साहब फाल्के की 'राजा हरिश्चंद्र' (सन् 1913) से लेकर आज के आधुनिक युग की 'ब्रह्मास्त्र' या 'आदिपुरूष' तक स्मृति का आख्यान फिल्मों की आत्मा रहा है। जब पर्दे पर पौराणिक पात्र राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, हनुमान आदि के आख्यान दिखाये जाते हैं तो दर्शक अपनी सुनी - सुनाई दादा - नानी की कहानियों की स्मृति से जुड़ जाते हैं। यही वजह रही है कि इन फिल्मों का सभी वर्ग के भारतीय दर्शकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रामायण पर आधारित फिल्मों में जामवंत द्वारा हनुमान को उनकी असीमित शक्तियों का स्मरण दिलाने वाला दृश्य बेहद शक्तिशाली होता है। यह स्मृति का आख्यान आत्मबोध (Self - realization) का प्रतीक है।9

दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र' पहली मूक फिल्म है। मूक फिल्म होने के कारण इसकी स्मृतियों को केवल दृश्यों, शारीरिक हाव-भावों और बीच-बीच में आने वाले इंटरटाइटल (पर्दे पर लिखे शब्दों) के माध्यम से ही दिखाया जा सकता था। सामान्यजन इस कहानी को पहले से ही जानता था। जब दशकों ने पर्दे पर राजा हरिश्चंद्र को सत्य की रक्षा के लिए कष्ट उठाते देखा तो उनकी पुरानी सुनी - सुनाई यादें जीवन्त हो उठीं। औपनिवेशिक काल में यह फिल्म भारतीयों को उनके अपने गौरवशाली अतीत और नैतिक मूल्यों की याद दिलाने का एक माध्यम बनी।

'जय संतोषी मां' फिल्म सन् 1975 में रिलीज हुई। इस फिल्म के आने से पहले संतोषी माता के बारे में बहुत कम लोग ही जानते थे किंतु इस फिल्म ने अपनी कहानी के माध्यम से देश के कोने - कोने में संतोषी मां के व्रत और उसकी गरिमा को पहुंचा दिया। इस फिल्म का लोगों के दिलों पर इतना प्रभाव पड़ा के थिएटर में फिल्म के प्रदर्शन के दौरान लोग सिनेमाघर को मंदिर की तरह मानने लगे थे। चप्पल - जूते बाहर उतारना, पर्दे पर, स्क्रीन पर सिक्के फेंकना और आरती के समय खड़े हो जाना उस दौर की सामूहिक स्मृति का हिस्सा है। इस तरह इस फिल्म ने सिनेमा को आस्था के एक माध्यम से रूप में बदल दिया।

सन् 1976 में बाबूभाई मिस्त्री द्वारा निर्देशित पौराणिक फिल्म 'बजरंगबली' महज एक व्यावसायिक फिल्म नहीं थी अपितु भारतीय जनमानस की धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना का हिस्सा बन गई। 'भक्त प्रहलाद' फिल्म सन् 1967 में बनी थी। 1967 का दौर भारत के लिए राजनीतिक और सामाजिक रूप से उथल -पुथल का दौर था। ऐसे समय में इस फिल्म ने समाज को अपनी सांस्कृतिक स्मृति की ओर लौटने का संदेश दिया। वर्ष 1981 में आई श्याम बेनेगल निर्देशित फिल्म 'कलयुग' आधुनिक कॉरपोरेट जगत् की पृष्ठभूमि में महान भारतीय महाकाव्य महाभारत का एक बेहतरीन रूपांतरण है। फिल्म में दो सगे भाइयों भीष्मचंद और रामचंद के परिवार के बीच व्यापारिक साम्राज्य का संघर्ष दिखाया गया है जो सीधे तौर पर पांडवों और कौरवों की स्मृति को ताजा करता है। श्याम बेनेगल ने इस फिल्म के माध्यम से यह दिखाने का सफल प्रयास किया है कि महाभारत आज भी हमारे समाज और हमारी संस्कृति में जीवित है। इस फिल्म में स्मृति का आख्यान तब प्रखर होकर उभरता है जब अतीत के छिपे हुए सच सामने आ जाते हैं। उदाहरण के तौर पर जब शशि कपूर (कर्ण का समानांतर रूप) को यह ज्ञात होता है कि अपनी ही माँ (सुप्रिया पाठक / विजया मेहता के संदर्भ में कुंती का रूप) का पुत्र है तो यह स्मृति का विस्फोट पूरे संघर्ष की दिशा बदल देता है। यह इस बात का साक्ष्य है कि इतिहास और अतीत की स्मृतियों को हम चाहे कितना भी समय की जमीन में दफना लें वे वर्तमान को नष्ट करने के लिए वापस लौटती हैं।

दृश्य कलाओं में स्मृति का आख्यान :

शोध-पत्र के आरंभ में कहा जा चुका है कि जिन कलाओं का अनुभव हम अपनी आंखों से देखकर करते हैं उन्हें दृश्य कला कहा जाता है। इसके अंतर्गत चित्रकला, मूर्तिकला, हस्तशिल्प, रेखाचित्र, फोटोग्राफी, ग्राफिक डिजाइन आदि रूप शामिल हैं।

जब एक कलाकार अपनी स्मृति को कैनवास पर उतारता है तो वह केवल एक घटना को चित्रित नहीं करता बल्कि वह उस घटना से जुड़े अपने संवेगों, संवेदनाओं और समय के प्रभाव को भी व्यक्त करता है। वह अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों को ही नहीं उकेरता अपितु वह अपने समाज, देश, इतिहास और संस्कृति के सामूहिक स्मृति का भी आख्यान करता है। चित्रकला का उद्गम कैसे हुआ इस विषय में विष्णु धर्मोत्तर पुराण के 35वें अध्याय के प्रारंभ में एक कथा दी गई है। एक बार नारायण ऋषि तप के लिए बैठे थे। इंद्रदेव ने अपनी सारी अप्सराओं को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेज दिया किंतु ऋषि ने उन अप्सराओं को देखकर उन पर मोहित होने की बजाय अमृतरस से उर्वी पर यानी जमीन पर एक लावण्यवती का चित्र बनाया। यही लावण्यवती यानी उर्वशी थी। ऋषि ने इस चित्र में प्राणों की स्थापना की और वह चित्र जीवित हो गया। ऋषिवर द्वारा निर्मित इस सुन्दर अप्सरा को देखकर इंद्र की सारी अप्सराएं शर्मिंदा होकर वहां से चली गईं। इसके पश्चात नारायण ऋषि ने चित्र का शास्त्र तैयार कर उसे विश्वकर्मा को सिखाया और यहीं से चित्रकला का जन्म हुआ। 10

राजस्थान की फड़ चित्रकला, ओडिशा और पश्चिम बंगाल की पटचित्र, तेलंगाना की चेरियाल स्क्रोल पेंटिंग, हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा और बसोहली शैली, बिहार की मधुबनी, महाराष्ट्र और गुजरात की बारली और पिथौरा चित्रकला आदि शैलियों में भारत की सामूहिक स्मृति आख्यान निहित है। जब एक पीढ़ी इन चित्रों को देखती है तो उसे अपने इतिहास और अपनी संस्कृति का आख्यान याद आ जाता है। उदाहरणार्थ , प्रेम, भक्ति और काव्य को अपने चित्रों का आधार बनाने वाली प्रसिद्ध कांगड़ा शैली में जो भावुकता , शांति और सौंदर्य देखने को मिलता है वह संसार की किसी भी चित्रकला शैली में दुर्लभ है। यही कारण है कि इसे 'पहाड़ी कला का मुकुट' या 'मुकुटमणि' कहा जाता है। 11 यह पहाड़ी चित्रकला की एक मुख्य उपशैली है जिसका विकास 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा क्षेत्र में हुआ। इस शैली में जयदेव के 'गीत गोविंद', बिहारी की 'सतसई' और केशव की 'रसिक प्रिया' के प्रसंग को चित्रित किया गया है। चित्रों में राधा को यमुना के किनारे, कुंजों में अथवा खिड़की के पास बैठकर कृष्ण की यादों में खोया हुआ दिखाया गया है। यहां स्मृति केवल एक विचार नहीं है बल्कि एक जीवित अनुभव बन जाती है। बारहमासा के चित्रों में बदलते मौसमों के साथ में नायक - नायिका की पुरानी स्मृति को जीवंत किया गया है। यह दर्शक को सीधे उस भावुकता से जोड़ती है जहां मौन ही सबसे बड़ा संवाद बन जाता है।

मूर्तिकला केवल पत्थर, मिट्टी या धातु को आकार देना मात्र नहीं अपितु यह इतिहास, बीता समय, व्यक्तिगत वेदना और सामूहिक चेतना को एक स्थाई भौतिक रूप देने का सशक्त माध्यम है। उदाहरण के तौर पर सम्राट अशोक के स्तंभ अथवा मौर्य और गुप्तकालीन मूर्तियां केवल कलाकृति नहीं हैं बल्कि उनमें तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक जीवन की स्मृति को संजोए हुए हैं। एक प्रकार से मूर्तिकला किसी व्यक्ति या घटना की अनुपस्थिति को उपस्थिति में बदलने का कार्य करती है। इसी तरह हस्तशिल्प मूर्त रूप में अमूर्त स्मृति है। कश्मीर की पश्मीना शॉल वहां की ठंड और पहाड़ों की स्मृति तथा असम के बाँस और बेंत के शिल्प वहां के जंगलों और बहती नदियों के जनजीवन का स्मरण दिलाते हैं। रेखाचित्र और छायाचित्र दोनों ही माध्यम स्मृति का संरक्षण करने, उसे पुनर्जीवित करने व उसका आख्यान रचने के सशक्त उपकरण हैं किंतु दोनों की स्मृति को अभिव्यक्त करने का स्वरूप अलग है। रेखाचित्र में पेंसिल या स्याही से खींची गई रेखाएं व्यक्ति, वस्तु या दृश्य की बाह्य बनावट से अधिक उसके आंतरिक भागों को पकड़ती हैं जबकि छायाचित्र स्मृति का एक भौतिक और प्रामाणिक दस्तावेज है तथापि ये एक- दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं। रेखाचित्र यह अनुभव कराता है कि अतीत कैसा था और छायाचित्र यह स्मरण कराता है कि अतीत कैसा दिखता था। ग्राफिक डिजाइन में डिजाइन के माध्यम से डिजाइनर सिर्फ दृश्य (Visuals) नहीं बनाता बल्कि वह एक ऐसा काल- पात्र (Time Capsule) तैयार करता है जो दर्शक को अतीत की किसी याद, भावना या संस्कृति से जोड़ देता है। पारंपरिक कलाकृतियों, लोककला (Folk Art) या ऐतिहासिक स्मारकों के रेखाचित्रों का उपयोग करके डिजाइनर किसी देश या समुदाय की पहचान को जीवित रखता है।

डिजिटल मीडिया आधुनिक युग में व्यक्ति की व्यक्तिगत और सामूहिक स्मृतियों को सहेजने, उन्हें दोबारा रचने और प्रस्तुत करने का सबसे बड़ा मंच है। पहले इतिहास अथवा स्मृतियों को संरक्षित करने का अधिकार प्राय: गिने - चुने लोगों के पास होता था किंतु डिजिटल मीडिया ने इसका लोकतंत्रीकरण कर हर व्यक्ति को अपनी स्मृतियों का स्वयं आर्किटेक्ट बना दिया है। जिन समुदायों के इतिहास को मुख्यधारा के मीडिया में स्थान नहीं मिला था वह अब डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से अपनी स्मृतियों की घटनाओं को लोगों को सामने रख रहे हैं। किसी आपदा के समय लोग आपबीती साझा करने के लिए एक विशाल वैश्विक सामूहिक स्मृति का निर्माण करते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म का दोषपूर्ण उपयोग यह है कि इस मंच पर व्यक्ति की स्मृतियां केवल निजी नहीं रहीं बल्कि वे प्रदर्शन का साधन बन गई हैं। लाइक (like) और कमेंट्स के मोह - जाल में व्यक्ति इतना फँस गया है कि किसी यात्रा या घटना को वह इसलिए याद नहीं रखना चाहता कि अमुक यात्रा या घटना उसके दिल के करीब है बल्कि वह इसलिए शेयर करता है ताकि उसे दूसरों से प्रशंसा मिल सके। हम अपने दु:ख के पलों को, अपनी विफलताओं को डिजिटल मंच पर जगह न देकर केवल सुंदर और सफल पलों का आख्यान निर्मित करते हैं जो एक अपूर्ण, अस्थिर और भ्रमित स्मृति का निर्माण करता है।

संदर्भ

1. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध-संग्रह में 'काव्य और कला' नामक निबंध, पृष्ठ 52

2. साभार रूपायन : संपादकीय पृष्ठ , अमर उजाला, अंक 29 मई 2026, पृष्ठ 2

3. पश्चिम और सिनेमा, दिनेश श्रीनेत, पृष्ठ 26

4. लेनिन ने यह कथन फरवरी 1922 में सोवियत संघ के पहले शिक्षा और संस्कृति कमिश्नर अनातोली लुनाचास्की (Anatoli Luna Charsky) से एक बातचीत के दौरान कहा। यह बातचीत पहली बार आधिकारिक रूप से सोवियत स्कोए किनो (Sovietskoye Kino) पत्रिका में प्रकाशित हुई। दृष्टव्य पृष्ठ 10, वर्ष 1933

5. Psychology : A Study of Mental Life, page 345

6. आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, पृष्ठ 214

7. Cinema 1, Preface, page X

8. "ले, देख ले लाला ! तू मुझे क्या खरीदेगा। मैं इस धरती की मां हूं।... तू मुझे मिटाना चाहता है ? सुन, औरत अगर जनम दे सकती है तो वह संहार भी कर सकती है।" -- राधा का डायलॉग, दृष्टव्य , मदर इंडिया फिल्म

9. दृष्टव्य, धारावाहिक रामायण का एपिसोड संख्या 42, लेखन और निर्देशन रामानंद सागर

10. भारतीय चित्रकला की कहानी, संपादक : तापोश चक्रवर्ती, प्रकाशक भारत ज्ञान विज्ञान समिति, नई दिल्ली, नवंबर 2007, पृष्ठ 5

11.Dr. M.S. Randhava, Kangra Paintings On Love, Page 17